14

धन्यकुमार

अहो ! देवता भी शिवसुख की प्राप्ति के लिये जिस उज्जयिनी नगरी में जन्म लेना चाहते हों, उस उज्जयिनी नगरी के गुणों का वर्णन कैसे सम्भव है ? उसी उज्जयिनी नगरी में धर्मबुद्धि और धर्मात्माओं के प्रति प्रेम रखने वाला 'अवनीपाल' नामक राजा राज्य करता था। उसके राज्य में सरल स्वभावी 'धनपाल' नामक एक वनिक (सेठ) रहता था। उसके अनेक शुभ लक्षणों वाली 'प्रभावती' नामक पत्नी थी। इनके परस्पर में प्रेम करने वाले सात पुत्र थें

तत्पश्चात् प्रभावती ने आठवें पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म के समय जब उसकी नाल को जमीन में गाड़ने गये तो वहाँ जमीन में से रत्नों का खजाना प्राप्त हुआ।

रत्नों का खजाना मिलने पर पिता धनपाल आदि इस आश्चर्य को देखकर राजा अवनीपाल के पास गये, और कहा - हे नाथ ! मेरे यहाँ उत्तम पुत्र का जन्म हुआ है और उसकी नाल गाड़ते समय मुझे बड़ा खजाना मिला है। यह सुनकर महाराज बोले कि हे श्रेष्ठी! जिस पुत्र के पुण्य से धन निकला है, वही इसका मालिक है, मुझे प्रजा के किसी धन की अभिलाषा नहीं है।

महाराज की इस प्रकार की निस्प्रहता देखकर धनपाल को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने घर जाकर पुत्र जन्म के उपलक्ष में जिनमंदिरों में कल्याण के कारणभूत और विघ्नविनाशक जिनेन्द्र भगवान की पूजा की, कुटुम्बीजनों तथा याचकजनों को अनेक प्रकार का दान देकर सन्तुष्ट किया। पुण्यशाली पुत्र के जन्म से परिजनों के धन्य व कृतार्थ होने के विचार से पुत्र का सार्थक नाम भी धन्यकुमार रखा। वह पुत्र माता-पिता आदि को आनन्दित करता हुआ देवकुमारों की भांति क्रम से वृद्धिगत होने लगा।

उसे कुमार अवस्था प्राप्त होने पर देव-गुरु और साधुओं का परिचय कराके विद्या -कला आदि के अभ्यास के लिये विद्यागुरु के समीप रखा गया, फलस्वरुप उसने थोड़े ही काल में सभी प्रकार की विद्यायें प्राप्त करली। वह कुमार अवस्था में भी निर्लोभी रहकर निरन्तर देव गुरु-धर्म के लिये प्रचूर धन खर्च करता था।

इस प्रकार निरन्तर उदारता से धन खर्च करना, उसके बडें भाईयों को सहन नहीं हुआ; उन्होंने एक दिन माता से कहा कि हम सब मेहनत करके धन कमाते हैं और धन्यकुमार उसे खर्च करता रहता है और वह कोई व्यापार भी नहीं करता।

उनकी बात सुनकर प्रभावती ने धनपाल से कहा कि अब धन्यकुमार युवा हो गया है; किन्तु फिर भी आप उसे व्यापार में नहीं लगाते, इस कारण उसके बड़े भाई भी उससे द्वेष करते हैं।

अपनी पत्नी के कहे अनुसार सेठ धनपाल शुभ मुहूर्त में पुत्र धन्यकुमार को बाजार ले गये और कहा- पुत्र ! अपने पास यह एक सौ दीनार रखो, और बाजार में कोई अच्छी वस्तु बिकने के लिये आवे तो उसे खरीद लेना और उस खरीदी हुई वस्तु से अन्य कोई अच्छी वस्तु बिकने आवे तो उसे खरीद लेना। इस प्रकार भोजन के समय तक खरीदना और भोजन के समय उस वस्तु को नौकरों के साथ लेकर घर आ जाना। इस प्रकार पिता ने शिक्षा देते हुए उसे एक सौ दीनार व्यापार के लिये दे दी।

सरल हृदय धन्यकुमार बाजार में खड़ा है। वहाँ लकड़ी की गाड़ी बिकने के लिये आई तो धन्यकुमार ने एक सौ दीनार देकर उसे खरीद ली और फिर लकड़ी की गाड़ी को बेचकर एक भेड़ खरीदी, तत्पश्चात् उसे बेचकर दूसरे के पास से एक चारपाई-खाट-खरीद ली और भोजन का समय हो जाने से नौकर द्वारा चारपाई उठवाकर धन्यकुमार घर आ गया। उसे घर आया देखकर माता बहुत आनन्दित हुई और कहने लगी कि आज धन्यकुमार पहले दिन व्यापार करके घर आया है, अतः उत्सव करना चाहिये।

धन्यकुमार द्वारा लाई हुई लकड़ी की चारपाई को देखकर सातों बड़े भाई कहने लगे कि वाह ! कैसी आश्चर्य की बात है कि पिता ने आज ही एक सौ दीनारें दी थीं, जिसे गँवाकर धन्यकुमार घर आया है फिर भी हमारी माता उत्सव कर रही है, जबकि हम तो रोजाना बहुत-सा धन कमाकर लाते हैं तो भी हमारी तरफ देखती भी नहीं है। अरे ! इसमें इसका क्या दोष है ? हमारे पूर्वोपार्जित कर्मों का ही दोष है।

माता ने प्रसन्नचित्त से सातों पुत्रों के इस वचन को हृदय में रख लिया और समस्त पुत्रों से पूर्व धन्यकुमार को भोजन कराकर स्वयं ने भी भोजन कर लिया। फिर एक मोटे बर्तन में पानी भरकर अपने ही हाथ से उत्साह पूर्वक चारपाई के पाये धोने-पोंछने लगी, धोते-पोंछते एक कील से एक पुराना धब्बा मिटाते समय चारपाई का एक पाया टूट गया।

धन्यकुमार के प्रचुर पुण्योदय से उसमें से रत्न बिखरने लगे, साथ ही एक पत्र भी निकला, जिसमें लिखा था कि -

"इस नगरी में पुण्यशाली, महाधनी वसुमित्र राजश्रेष्ठी हो गये हैं। उनके प्रचूर पुण्योदय से उनके यहाँ समस्त भोगोपभोग सम्पदा को देने वाली नवनिधि उत्पन्न हुई थी। एक दिन वसुमित्र ने उपवन में पधारे हुए अवधिज्ञानी मुनिराज से जाकर पूछा कि प्रभो ! ऐसा कौन पुण्यवान नररत्न उत्पन्न होगा कि जो इन नवनिधि का स्वामी होगा? मुनिराज ने अवधिज्ञान से देखकर कहा कि महाराज अवनिपाल की उत्तम राजधानी में धनपाल सेठ के यहाँ धन्यकुमार नाम का पुत्र उत्पन्न होगा। वही पूर्वोपार्जित पुण्योदय से इस नवनिधि का स्वामी होगा और उसके द्वारा लोगों को बहुत सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होगी।"

इस प्रकार अवधिज्ञानी मुनिराज का वचन सुनकर वसुमित्र सेठ ने घर जाकर एक पत्र लिखकर उत्तम रत्नों के साथ में चारपाई के पायों में रखकर उन्हें बन्द कर दिया। कुछ समय पश्चात् सेठ वसुमित्र समाधिमरण पूर्वक स्वर्ग सिधारे और उनके पीछे परिवारजन भी मरणदशा को प्राप्त हुए। उनमें से जो सबसे अन्तिम मनुष्य मरण को प्राप्त हुआ उसे जलाने के लिये चारपाई सहित श्मशान में ले गये और वह चारपाई चाण्डाल को प्राप्त हुई। जिसे पुण्योदय से धन्यकुमार ने चाण्डाल से खरीद ली।

अहो ! पुण्योदय से अत्यन्त दुर्लभ वस्तु भी बिना प्रयत्न के चरणों में आ पड़ती है।

धन्यकुमार चारपाई से प्राप्त पत्र को पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस पत्र को लेकर राजा के समीप गया। राजा ने पत्र में लिखे अनुसार समस्त निधियां धन्यकुमार के सुपुर्द कर दी। धन्यकुमार ने उत्कृष्ट नवनिधियों को अपने अधिकार में लेकर सर्वप्रथम देव-शास्त्र-गुरु की महापूजा में अतिशय धन खर्च किया और भक्ति पूर्वक सत्पात्रों को दान दिया तथा दीन-दुखियों को इच्छित दान दिया।

इस प्रकार के महान पुण्योदय से वह परिजनों तथा पुरजनों को अत्यन्त प्रिय होने लगा और ग्राम के अन्य श्रेष्ठी अपनी सुन्दर कन्याओं का सम्बन्ध उसके साथ करने हेतु तत्पर होने लगे; परन्तु धन्यकुमार का इस प्रकार का अभ्युदय उसके बड़े भाइयों से सहन नहीं हुआ-इस कारण वे उससे ईर्ष्या करने लगे और उसे मार डालने के षड़यंत्र रचने लगे, किन्तु सरलचित्त धन्यकुमार उनके इस दुष्ट अभिप्राय से अनजान था।

एक दिन सातों बड़े भाई धन्यकुमार को मार डालने के अभिप्राय से उपवन की वापिका

में जलक्रीड़ा के लिये ले गये और वापिका के किनारे बैठे हुए धन्यकुमार को बड़े भाइयों ने पीछे से धक्का देकर वापिका में गिरा दिया व ऊपर से पत्थरों की मार मारने लगे। उस समय धन्यकुमार ने णमोकार मन्त्र का स्मरण किया और इसे पूर्व कर्म का उदय समझकर धैर्य धारण कर लिया। बड़े भाई इसे मरा हुआ जानकर वहाँ से चले गये। पश्चात धन्यकुमार अपने पुण्योदय से बच गये, तब बाहर निकलने पर अपने बड़े भाइयों की दुष्टता पर विचार कर यह निर्णय किया कि अब घर जाकर दुष्ट भाईयों के साथ रहना योग्य नहीं है। ऐसा विचार कर धन्यकुमार अन्य देश के लिये रवाना हो गये। चलते-चलते एक खेत में किसान को हल चलाते देख उसे आश्चर्य हुआ कि यह किस जाति की विद्या है? मैंने तो कभी ऐसी विद्या देखी नहीं- इस प्रकार उसे देखते-देखते वे अपनी थकान दूर करने के विकल्प से वहीं बैठ गये।

किसान धन्यकुमार को थका हुआ देखकर उनके हाल-चाल पूछने उनके पास गया, तथा धन्यकुमार को देखकर आश्चर्य में पड़ गया और विचारने लगा कि 'अवश्य ही यह कोई महापुरुष है' अतः उसने धन्यकुमार को अपना अतिथि मानकर उनसे निवेदन किया-

हे सज्जनोत्तम ! मेरे पास शुद्ध दही और भात है, उन्हें आप कृपा करके स्वीकार करें, आप मेरे अतिथि हैं। धन्यकुमार की स्वीकृती पाकर किसान को बहुत प्रसन्नता हुई और वह दही-भात परोसने के लिये पात्र (पत्तल) लेने चला गया। इधर कौतूहलवश धन्यकुमार ने हल चलाया तो हल का कांटा एक विशाल सोने की मोहरों से भरे हुये बर्तन से टकराया। उसे देखकर धन्यकुमार को लगा कि अरे ! ऐसे अपूर्व विज्ञानाभ्यास से बस होओ ? यदि इस विशाल धन को किसान देख लेगा तो वह भी भाइयों की तरह दुष्ट बर्ताव करेगा। -ऐसा विचारकर उस धन के खजाने पर मिट्टी डाल दी और वापिस यथास्थान आकर बैठ गये।

इतने में ही किसान पत्र (पत्तल) लेकर आगया और शुद्ध जल से उसे साफ करके दही-भात का भोजन धन्यकुमार को कराकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। कुमार भी भोजन करके राजगृह नगर का मार्ग पूछकर वहाँ से रवाना हो गये।

धन्यकुमार के जाने के बाद जब किसान पुनः हल चलाने लगा, तब उसकी नजर धन से भरे खजाने पर पड़ी। उसे देखकर किसान को आश्चर्य हुआ कि अहो ! यह धन इन भाग्यशाली के भाग्य से निकला है- इस कारण इसका स्वामी वही भाग्यशाली पुरुष है। अतः यह धन मुझे स्वीकारना योग्य नहीं है।

अहो ! देखो, किसान गरीब है, फिर भी उसमें कितनी निर्लोभता और सज्जनता है कि

अपने खेत में से इतना बड़ा खजाना मिलने पर भी मैं उसका स्वामी नहीं, किन्तु भाग्य से निकला है अतः वही उसका मालिक है ऐसा मानता है।

वह किसान धन्यकुमार के पीछे-पीछे आवाज लगाता हुआ दौड़ता है। कुमार भी किसान की आवाज सुनकर खड़े रहते हैं। किसान धन्यकुमार के समीप आकर विनम्रता से कहता है कि हे भाग्यशाली ! आपके पुण्योदय से जो मोटा खजाना निकला है, आप ही उसके स्वामी हैं।

धन्यकुमार ने कहा- हे भाई ! मैं तो अपने साथ कुछ लाया नहीं, मैंने तो तुम्हारे दही-भात खाये हैं। जो धन तुम्हारे खेत में से निकला है तुम्ही उसके मालिक हो, मैं नहीं। तब किसान बोला कि हम अपने बाप-दादा के जमाने से यह खेत जोतते है, परन्तु धन का ऐसा खजाना कभी नहीं मिला। अतः आज जो खजाना निकला है, वह तो आपके पुण्योदय से ही निकला है- इस कारण इसके स्वामी आप ही हैं। तब धन्यकुमार ने कहा कि भले ही ऐसा हुआ हो; परन्तु यह धन का खजाना मैं तुम्हें भेंट देता हूँ, तुम उसे स्वीकार करो। इस बात को सुनकर किसान ज्यादा कुछ नहीं बोल सका, मात्र इतना ही कहा कि "इस दास के योग्य कोई कार्य-सेवा हो तो अवश्य याद करना।"- ऐसा कहकर वे दोनों अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं।

राजगृही चलने के लिये आगे बढ़ते- बढ़ते धन्यकुमार अपने महाभाग्य से एक अवधिज्ञानी मुनिराज को एकान्त स्थान में बैठे देखते हैं। मुनिराज के दर्शन से धन्यकुमार को बहुत प्रसन्नता होती है।

मुनिराज को वन्दन करके वे उनसे धर्म का स्वरुप पूछते हैं, जिसके उत्तर में मुनिराज विस्तार से धर्म के स्वरुप का वर्णन करते हैं। उसे सुनकर धन्यकुमार को बहुत आनन्द आता है। तत्पश्चात् वे मुनिराज से पूछते है कि प्रभो ! मुझे किस पुण्योदय से धन के खजाने मिलते हैं और माता अत्यधिक प्रेम करती है तथा किस पापोदय के कारण भाई मुझसे द्वेष करते हैं- यह सब कृपा करके कहो ?

मुनिराज धन्यकुमार को आसन्नभव्य जानकर उनके पूर्व जन्म की कथा कहते हैं-

हे भव्य ! तू चित्त को स्थिर करके अपने पूर्व भव की कथा सुन ! क्योंकि उसे सुनकर तुझे संसार से वैराग्य उत्पन्न होगा। और धर्म में रुचि होगी, पापों से डर लगेगा, दान, शील, तप, नियमादि में प्रवर्तन होगा, तेरे पूर्वभव की कथा सुनने से अन्य जीवों का भी उपकार होगा।

मगध देश के अन्तर्गत भोगावती नाम की एक नगरी थी। उसके स्वामी का नाम कामवृष्टि था तथा उसकी स्त्री का नाम मृष्टदाना था। उसके घर में सुकृतपुण्य नाम का एक

नौकर था। जब मृष्टदाना गर्भवती हुई, तब पापोदय से उसके पति कामवृष्टि का मरण हो गया। तत्पश्चात् ज्यों-ज्यों गर्भ वृद्धिगत होता गया, त्यों-त्यों उसके परिवार के सभी मनुष्य मरते गये। जब पुत्र का जन्म हुआ, तब मृष्टदाना की माता भी मर गई और पुण्यकर्म भी नष्ट हो गया। अतः बुद्धिमान पुरुषों को अनिष्ट संयोग का प्रधान कारण जो पाप है, उसे प्राण जाने पर भी नहीं करना चाहिये।

जब मृष्टदाना के पास कुछ भी नहीं बचा तो वह उस पापी पुत्र का पेट अनाज पीस-पीसकर भरने लगी। कामवृष्टि के मरणोपरान्त उसका नौकर सुकृतपुण्य पुण्योदय से भोगावती नगरी का स्वामी बन गया।

देखो ! इस बालक ने पाप के अलावा कभी पुण्य कर्म नहीं किया- इस कारण उसकी दारुण दुःखदायक दशा हुई। इस कारण से उसकी माता ने अभागे पुत्र का नाम अकृतपुण्य रखा।

इतना सुनकर धन्यकुमार ने मुनिराज से पूछा कि - हे भगवान ! पापी अकृतपूण्य ने पूर्व में कौन-कौन से पाप किये थे, जिस कारण उसकी ऐसी दुःखदायक दशा हुई।

मुनिराज धन्यकुमार के प्रश्नों के उत्तर देते हुए आगे की कथा कहने लगे-

इसी देश में भूतिलक नाम का सुन्दर नगर था; उसमें महादानी, महाधनी, बुद्धिमान शुभकर्म करने वाला धनपति नाम का एक सेठ रहता था। एक दिन धनपति सेठ को विचार अया कि यह लक्ष्मी तो पुण्योदय से मिली है और इसका सही उपयोग पात्रदान से ही है। परन्तु उत्तम पात्र साधु तो आहार के सिवाय कुछ लेते नहीं। अतः इसका सदुपयोग करने के लिये बड़े-बड़े जिनालय बनवाने चाहिये, जिससे अनेक जीव जिनेन्द्र दर्शन, भक्ति, पूजन, आदि करने पधारे तो उन्हें धर्मलाभ प्राप्त हो। दूर-दूर से यात्री दर्शनार्थ आवें। इस प्रकार महान पुण्योपार्जन का कारण होने से जिन मंदिर बनवाकर विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराने से धन की सफलता होती है। - ऐसा विचारकर उसने विशाल जिन मंदिर बनवाया और उसमें सुन्दर मणि-रत्नों की प्रतिमायें पधराई, जिनकी सर्वत्र प्रसिद्धि हुई।

उसे सुनकर दुर्व्यसनी चोर ने लोभ के वशीभूत होकर विचार किया कि इन मणि रत्नों की प्रतिमाओं की चोरी के लिये त्यागी का वेश धारण करने से चोरी में सुगमता रहेगी। इसलिये मायाजाल से कपटता पूर्वक ब्रह्मचारी का वेश धारण करके मिथ्या तपश्चरणादि करने लगा और उससे भोले लोगों में बहुत प्रशंसा होने लगी। गाँव-गाँव में भ्रमण करते हुए वह कपटी ब्रह्मचारी एक बार भूतिलक नगर में आया और धनपति सेठ ने लोगों के मुख से उसकी प्रशंसा सुनी।

इस कारण धनपति सेठ ब्रह्मचारी के पास जाकर विनती करके उसे अपने जिनालय में ले आया। वहाँ उस ब्रह्मचारी ने बगुले की तरह मायाचार के काय क्लेश आदि द्वारा लोगों में मान प्राप्त किया।

एकबार धनपति सेठ ने ब्रह्मचारी से विनती करके कहा कि मैं धन उपार्जन के लिये विदेश जाता हूँ। जब तक मैं वापिस नहीं आऊँ तब तक आप इस जिन-मंदिर और जिन-प्रतिमाओं की सम्भाल रखना; परन्तु कपटी ब्रह्मचारी तो कहने लगा कि अरे सेठ ! हम तो त्यागी हैं, ऐसी उपाधि में हमारा काम नहीं है। फिर भी सेठ अत्यन्त आग्रह पूर्वक ब्रह्मचारी को सब सौंपकर परदेश चला गया।

सेठ के परदेश जाते ही कपटी वेशधारी को मौका मिल गया। उसने जिनालय के कीमती उपकरणों को व्यसनादि के लिये खर्च कर दिया; परन्तु ऐसे पाप कब तक छिपे रहते? उसके सम्पूर्ण शरीर में कोढ़ का रोग फूट निकला, जिससे उसे महापीड़ा होने लगी। शरीर महादुर्गन्धमय हो गया। सत्य ही कहा है कि अधिक पुण्य अथवा पाप का फल तुरन्त ही आ जाता है।

अरे, हलाहल जहर खाना तो ठीक है, क्योंकि वह तो एक ही भव में प्राण हरता है; परन्तु निर्माल्य द्रव्य खाने से तो अनन्त भव बिगड़ते हैं, इस बात को ध्यान में लेकर बुद्धिमानों को देव-शास्त्र-गुरु का निर्माल्य द्रव्य कभी नहीं लेना चाहिये।

ब्रह्मचारी कोढ़ की भीषण वेदना में वहाँ रहता था। ऐसे में सेठ धनपति विदेश यात्रा से वापिस आ गया। उसे देखकर ब्रह्मचारी का क्रोध भभक उठा कि अरे पापी सेठ परदेश में मरा नहीं और घर वापिस आगया। इस प्रकार क्रोध ही क्रोध में उसकी रोग की वेदना बढ़ गई और महारौद्रध्यान से महाकष्ट से प्राण छोड़कर वह सातवें नरक में गया।

वहाँ जाकर विचारता है कि अरे ! इन घोर दुःखों का अन्त कब आयेगा? -ऐसा विलाप करता है। इस तरह सातवें नरक के दुःख तैंतीस सागर तक सहन करके महामच्छ हुआ और वहाँ भी अत्यन्त कठोर पाप किये, फिर सातवें नरक में गया, महादुःख भोगकर वहाँ से निकलकर त्रस-स्थावर योनियों में बहुत काल तक भ्रमण किया और वहाँ से निकलकर अकृतपुण्य हुआ।

मुनिराज कथा को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि- वह अकृतपुण्य एक दिन सुकृतपुण्य के खेत पर गया और सुकृतपुण्य की खुशामद करके कहने लगा कि दूसरे लोग तुम्हारे खेत में से चने उखाड़ते है, यदि मैं भी उखाडूं तो मुझे क्या दोगे ?

ऐसे दीन वचन सुनकर सुकृतपुण्य विचारने लगा कि- अहो ! संसार में कर्म की विचित्रता है। जो स्वामी है वह तो नौकर हो जाता है और जो नौकर हो वह स्वामी बन जाता है। हाय ! यह तो मेरे ही सेठ का पुत्र है, परन्तु कर्मोदय से मेरे पास याचना करता है। धिक्कार है ऐसे कर्मों को ! ऐसा विचारकर दया से सुकृतपुण्य ने उसे स्वर्ण से भरा हुआ कलश दे दिया; परन्तु अकृतपुण्य के पाप कर्म इतने तीव्र थे कि हाथ में लेते ही उसे वह कलश अग्नि के अंगारों की तरह जलाने लगा, इससे अकृतपुण्य कहने लगा कि भाई ! तुम दूसरो को तो चने देते हो, तब मुझे ये अंगारे क्यों दे रहे हो ?

इसे देखकर सुकृतपुण्य ने सोचा कि अभी इसके पापकर्म दारुण हैं। अतः उसने कहा कि भाई ! तू मेरे अंगारे मुझे दे दे और जितने चने तुझसे ले जाये जा सकें, ले जा। अकृतपुण्य अपने साथ जितने चने लेजा सका, उतने चने बाँधकर घर ले गया। उसकी माता ने चने देखकर पूछा कि तू चने कहाँ से लाया ?

तब उसने कहा- मैं सुकृतपुण्य के खेत पर काम करने गया था वहाँ से लाया हूँ। यह सुनकर उसकी माता दुःखित हृदय से विचारने लगी कि हाय ! जो सुकृतपुण्य हमारा ही नौकर था, वह मालिक हो गया और हम मालिक थे जो भिखारी हो गये। अहो ! भाग्य की गति न्यारी है ऐसा विचारकर उसने देशान्तर जाने के लिये चने का नाश्ता बनाया और माता-पुत्र-दोनों अन्य गाँव की और रवाना हो गये। दोनों चलते-चलते अवन्ति देश के सोवाक गाँव में जा पहुंचे और मार्ग की थकावट दूर करने के लिये उस गाँव के सेठ बलभद्र के सामने जा बैठे।

सेठ बलभद्र ने पूछा कि बहिन ! आप कहाँ से आई हो और कहाँ जाने के लिये निकली हो? यह सुनकर दुःखी मृष्ठदाना रोते-रोते कहने लगी कि भाई ! हम मगध देश से निकले हैं और जहाँ हमारी आजीविका चले वहाँ जाना है। यह सुनकर सेठ बलभद्र को दया आई, उसने कहा कि बहिन ! यदि तुम्हें आजीविका की आवश्यकता है तो यहीं मेरे यहाँ ही रहो और मेरी रसोई बना दिया करो तथा तुम्हारा पुत्र है वह मेरी गायों की चर्या कर दिया करेगा। मैं आपको उचित वेतन व भोजनादि दूंगा। मृष्ठदाना ने यह बात स्वीकार करली। अतः सेठ ने उनके रहने के लिये अपने ही घर के पीछे की एक झोंपड़ी देदी।

सेठ बलभद्र के सात पुत्र हैं। उनके खाने के लिये प्रतिदिन सवेरे खीर का भोजन बनता है। उसे देख-देखकर अकृतपुण्य भी रोजाना अपनी माता के पास खीर खाने के लिये रोया करता है। माता उसे समझाती है कि तूने पूर्व भव में कोई पुण्य कर्म नहीं किया अतः मैं तुझे

ऐसा उत्तम भोजन कहाँ से लाकर दूँ? परन्तु अकृतपुण्य तो बालक है, इस कारण रोजाना सेठ के पुत्रों को खीर खाते देखकर माता से खीर मांगता है और खीर नहीं मिलने से रोता है। यह देखकर सेठ के दुष्ट पुत्र उसे मारते हैं। एक बार मारने से उसे अधिक लग गई और उसका मुंह सूज जाने से विकृत हो गया।

अकृतपुण्य की ऐसी दशा देखकर सेठ बलभद्र ने पूछा कि यह मुख कैसे सूज गया? तब उसकी माता ने कहा कि यह खाने के लिये खीर माँगा करता था, परन्तु पाप के उदय से खीर कैसे मिल सकती है? उसके बदले में आपके पुत्रों ने उसकी यह दशा की है। यह सुनकर सेठ को बहुत दया आई और उसने अकृतपुण्य की माता से कहा कि तू मेरे घर से घी, दूध, चावल और शक्कर अपने घर ले जा और उनकी खीर बनाकर पुत्र की अभिलाषा पूर्ण कर। सेठ के कहे अनुसार वह दूध आदि सामग्री अपने घर लाई और पुत्र से कहा कि आज मैं तूझे खीर बनाकर खिलाऊंगी, तू बछड़ों की टहल करके शीघ्र आ जाना।

अकृतपुण्य प्रसन्नचित्त से बछड़ों की चर्या करने गया और माता के कहे अनुसार जल्दी आ गया। इतने में माता ने खीर बनाकर तैयार कर दी। माता ने अकृतपुण्य से कहा कि बेटा! मैं पानी भरकर अभी घर आती हूँ। यदि इतने में कोई साधु आवे तो उन्हें जाने मत देना; क्योंकि दान से बहुत पुण्य बंधता है। उत्तम पात्रों को दान देने से अपने को उत्तम भोजन मिला करेगा तथा उत्तम पात्रदान से ही गृहस्थाश्रम की सफलता है। हमने पहले कभी दान नहीं दिया, इस कारण दरिद्रता के दुःख सहन करने पड़ रहे हैं इत्यादि प्रकार से धार्मिक भावना समझा कर माता घड़ा लेकर पानी भरने गई।

इतने में महान पुण्योदय से अकृतपुण्य को रत्नत्रय के धारक व अनेक ऋद्धियों से विभूषित महापात्र ''सुवृत'' नामक मुनिराज एक माह के उपवास के पारणें के लिये शरीर की स्थिति के लिये बलभद्र के घर की तरफ आते दिखाई देते हैं यह देखकर अकृतपुण्य शुद्ध मन से विचारता है कि अहो ! यह महान साधु महात्मा है।

देखो, उनके पास वस्त्रादि कुछ भी नहीं है। अहो ! मेरे महान पुण्योदय से साधु महात्मा पधारे हैं मैं इनको जाने नहीं दूंगा।

इस प्रकार विचार करते हुए वह मुनिराज के सामने जाकर विनती करने लगा कि- प्रभो! मेरी माता ने बहुत ही सरस खीर बनाई है वह आपको भोजन में देनी है। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप यहीं ठहरें। मेरी माता अभी पानी भरकर आती ही है। परन्तु मुनिराज का

यह मार्ग नहीं है इसलिये वे धीमें-धीमें आगे बढ़ने लगे।

तब अकृतपुण्य मुनिराज के चरण पकड़कर अत्यन्त विनय पूर्वक पुनः बोलता है कि- तात्! मेरे ऊपर दया करो, कुछ देर खड़े रहो आप यहाँ से आगे मत पधारो- इस प्रकार प्रार्थना करने लगा। इतने में उसकी माता पानी भरकर आ जाती है। और मुनिराज को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती है। जैसे अनायास दुर्लभ धन मिलने से प्रसन्नता होती है, वैसी ही प्रसन्नता इस समय उसे हुई। उसने तुरन्त अपने सिर से पानी का घड़ा उतारकर मुनिराज के चरणों में नमस्कार किया और हे स्वामी ! नमोस्तु.... नमोस्तु... अत्र... अत्र... अत्र... तिष्ठ... तिष्ठ... तिष्ठ..., ठः ठः ठः, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायाशुद्धि, भूमिशुद्धि, आहार-जल शुद्ध है - ऐसा कहकर मुनिराज का पड़गाहन किया।

तत्पश्चात् मुनिराज को घर ले जाकर उच्च आसन पर विराजमान किया और नवधाभक्ति से अत्यन्त हर्षित होकर पुत्र के साथ-साथ माता ने मुनिराज को खीर का आहार कराया। मुनिराज को आहार करते देखकर अकृतपुण्य बहुत ही आनन्दित हुआ। इस कारण उसने महान पुण्य का उपार्जन किया वह विचारने लगा कि अहो ! आज मैं कृतार्थ हुआ, आज मैं बहुत खुश हुआ हूँ। आज महादान से मेरा जन्म सफल हुआ है। अहो ! आज मैं कितना भाग्यशाली हूँ। देव, राजा, महाराजा, और विद्याधरों से वन्दनीय महापात्र मुनिराज मेरे घर आहार कर रहे हैं। इस प्रकार अकृतपुण्य उल्लास पूर्वक पवित्र भावना से महान पुण्य का उपार्जन करता रहा है।

जितेन्द्रिय योगीराज ने खड़े-खड़े शान्तभाव से पाणिपात्र में आहार करके दाता को पावन किया और शुभ-आशीर्वाद प्रदान कर वन-जंगल की तरफ विहार कर गये। अहा ! देखो बालक की उत्तम भावना ! कि जो खीर के लिये कितने ही समय से रोता था और जैसे-तैसे सेठ की कृपा से खीर मिली तो वह उसे खाने के लिये ऐसी लोलुपता नहीं करता कि यह खीर मुझे बड़ी कठिनाई से मिली है; अतः मैं किसी को नहीं खाने दूंगा, बल्कि सारी ही खीर मैं खा जाऊंगा। परन्तु साधु महाराज को खीर देने के लिये धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करता है। और सद्भाग्य से मुनिराज के आजाने पर निर्लोभता से भक्ति से -उल्लासपूर्वक खीर का दान देकर आनन्दित होता है।

वे मुनिराज अक्षीण ऋद्धि से विभूषित थे- इस कारण मुनिराज का आहार होने से खीर अक्षीण हो गई (चक्रवर्ती की समस्त सेना भोजन करे तो भी उस दिन अक्षय ऋद्धि के कारण

भोजन खत्म नहीं होता) जब मुनिराज आहार करके चले गये तो मृष्टदाना ने अकृतपुण्य को बहुत खीर जिमाई और स्वयं भी भर पेट खाई, तो भी खीर रंचमात्र कम नहीं हुई। यह देखकर उसको बहुत आश्चर्य हुआ और सेठ बलभद्र के कुटुम्ब को भोजन के लिये बुलाया तो भी भोजन कम नहीं हुआ। तब पूरे गाँव को दिन भर भोजन कराया- इस महादान से माता-पुत्र की बहुत प्रशंसा-प्रसिद्धि हुई।

खीर खाकर अकृतपुण्य बछड़ों को चराने के लिये वन में ले गया, किन्तु पेट भर गरिष्ट भोजन खाने से उसको निंद्रा आ गई और गायें स्वयं वापस घर आ गई। गायों को अकेला आया देखकर उसकी माता सोचने लगी कि पुत्र वापिस घर क्यों नहीं आया? उसे क्या हुआ होगा? ऐसी चिन्ता से वह रोने लगी और सेठ से उसकी खोज कराने को कहा। मृष्टदाना के आग्रह से सेठ अपने नौकरों सहित अकृतपुण्य को खोजने के लिये निकला।

इधर जब अकृतपुण्य की निद्रा उड़ी तो उसने गायों को नहीं देखा, अतः व्याकुल होकर उन्हें चारों तरफ खोजते-खोजते घर की तरफ आने लगा। इतने में अपने सामने सेठ बलभद्र को आते देखकर डरकर पर्वत पर चढ़ गया। बलभद्र ने उसकी बहुत खोज की, परन्तु उसके नहीं मिलने पर वह वापिस घर आ गया।

अकृतपुण्य पर्वत के ऊपर गुफा के दरवाजे पर खड़ा रहा। गुफा में सुव्रत मुनिराज धर्म का उपदेश दे रहे थे, सो अकृतपुण्य भी उसे प्रसन्नता पूर्वक सुनने लगा।

उपदेश पूर्ण होने के पश्चात् श्रावकगण णमो अरहंताणं का उच्चारण करते हुए गुफा में से बाहर निकले। अकृतपुण्य भी उन लोगों के साथ मंत्र का उच्चारण करते हुए पीछे-पीछे जा रहा था, इतने में एक क्षुधातुर बाघ ने उसे पकड़ लिया और अकृतपुण्य ने मंत्र के स्मरण सहित समाधिपूर्वक देह का त्याग किया और उपार्जित किये हुए महान पुण्य के उदय से सौधर्म स्वर्ग में महर्धिक देव हुआ।

अहो ! देखो, कहाँ तो उसके प्रबल पापोदय और कहाँ उस दुर्लभ पात्रदान का योग और कहाँ उत्तम भावना से प्राप्त स्वर्ग।

इधर रात भर पुत्र के न आने से चिन्तातुर माता सवेरा होते ही सेठ बलभद्र को लेकर खोजने के लिये निकली। वह उसे खोजते-खोजते उसी पर्वत पर जा पहुंचे, कि जहाँ प्रिय पुत्र का आधा खाया हुआ शरीर पड़ा हुआ था। उसे देखकर पुत्र की मृत्यु जानकर उसकी माता महा शोक-रुदन करने लगी।

इधर अकृतपुण्य स्वर्ग में उत्पन्न होने पर विचार करने लगा कि अहा ! मैं कौन हूँ ? और यह सुखमय स्थान कौन-सा है ? इत्यादि विचार प्रकट करते ही उसे अवधिज्ञान प्रकट हो गया और पूर्व जन्म कि सारी बातें जान ली। तथा अपनी माता को रुदन करते देखकर उसने सर्वप्रथम तो जिन मंदिर में जाकर जिनेन्द्र देव की महापूजा-भक्ति की और पश्चात् बहुत वैभव के साथ माता को समझाने के लिये पृथ्वी पर आया। शोक से रुदन करती माता को देखकर कहा कि हे माता ! तू रुदन मतकर, मैं ही तेरा पुत्र हूँ, परन्तु पात्रदान और व्रतादि के शुभभाव से तथा नमस्कार मंत्र के प्रभाव से मैं देव हुआ हूँ। -ऐसा कहकर स्वर्ग के उत्तम-उत्तम सुखों का वर्णन किया और अन्त में कहा कि हे माता! यह सब प्रताप दान, व्रतादि का है, अतः तू भी व्रतादि का पालन कर और रुदन छोड़! रुदन करने से पाप बन्ध होता है। अतः तू दुर्लभ संयम का ग्रहण करके मनुष्य जन्म सफल कर! इत्यादि सम्बोधन करके देव स्वर्ग में गया और माता मृष्टादाना को महान आश्चर्य हुआ कि अहो ! कहाँ तो अकृतपुण्य की दारुण दशा और कहाँ महान पात्रदान लाभ और व्रतादि की भावना से स्वर्ग का उत्तम सुख! ऐसा जानकर वह भी घर-बार का परित्याग कर संसार से विरक्त होकर दीक्षित हुई और यथायोग्य तपादि करके समाधि पूर्वक प्राणों का परित्याग किया। जहाँ अकृतपुण्य का जीव था वहीं बलभद्र का जीव देव और मृष्टदाना का जीव देवी हुआ।

मुनिराज धन्यकुमार से कहते हैं कि हे कुमार ! वही बलभद्र स्वर्ग में से यहाँ तेरे पिता धनपाल हुये हैं और माता मृष्टदाना स्वर्ग में से तेरी माता हुई है, जो पूर्व के स्नेह से तुझ पर विशेष प्रेम रखती है। अकृतपुण्य का जीव पात्रदान के प्रभाव से जो स्वर्ग में देव हुआ था, वह अब तुम्हारे रूप में धन्यकुमार बना है और बलभद्र के सात पुत्र तुम्हारे भाई के रूप में उत्पन्न हुए हैं जो तुम्हें मारना चाहते हैं। तुम्हें वर्तमान में जो स्थान-स्थान पर लक्ष्मी, सौन्दर्यता, यश आदि मिलते हैं वह सब पूर्व के पात्रदान का तथा व्रतादि की भावना का व नमस्कार मंत्र के स्मरण का फल है। अब तुम इस भव में भी प्रयत्न पूर्वक धर्म करने में सावधान रहना इत्यादि आशीर्वाद दिया। धन्यकुमार अपने पूर्व भव जानकर व पात्रदान आदि का फल जानकर बहुत प्रसन्न हुआ और धर्म में विशेष दृढ़ हुआ।

अब धन्यकुमार मुनिराज के द्वारा सुनाये गये धर्म के उत्तम फल का विचार करते हुए राजगृही नगर की तरफ जा रहा है। राजगृही नगर के बाहर एक सूखे हुए वन में जाकर विश्राम करता है। जब धन्यकुमार सूखे हुए वृक्ष के नीचे विश्राम के लिये बैठता है, तब सारा

ही वन एकदम हरा-भरा हो जाता है। सूखी बावड़ी पानी से भर जाती है। इस वन का मालिक कुसुमदत्त है। वह अपने वन को सूख जाने से काटने का विचार करता था, इतने में एक अवधिज्ञानी मुनिराज से उसकी भेंट हो गई। सेठ कुसुमदत्त मुनिराज को भक्ति से नमस्कार करके पूछता है कि प्रभो ! यह वन सूख गया है सो फिर से नंदनवन समान होगा या नहीं? मुनिराज कहते हैं कि कोई भाग्यवान पुरुष यहाँ आकर बैठेगा, उस समय यह वन नंदनवन के समान हो जायेगा। इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर सेठ कुसुमदत्त उस भाग्यवान पुरुष की प्रतिक्षा करता था।

धन्यकुमार के आने से यह सूखा वन फल-फूलादि से नंदनवन समान बन जाने से आश्चर्ययुक्त कुसुमदत्त सेठ, धन्यकुमार के पास आकर नम्रता से पूछता है कि - आप भाग्यशाली कौन हैं ? और किस स्थान से पधारे हैं? तब धन्यकुमार कहता है कि मैं उज्जैनी का निवासी वणिक पुत्र जैन हूँ। तब सेठ अत्यन्त प्रसन्नता से कहता है कि मैं भी जैनी ही हूँ। -इस कारण आप मेरे साधर्मी हैं, अतः आप मेरे घर पधारने की कृपा करें। धन्यकुमार सेठ का वात्सल्य देखकर उनके घर जाता है। सेठ अत्यन्त आदर-सत्कार पूर्वक उसे घर लेजाता है और अपनी पत्नी से कहता है कि यह अपने अतिथि/मेहमान हैं; अतः इनका भली भांति स्वागत करना। सेठानी धन्यकुमार को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती है और यह मेरा भावी दामाद है -ऐसा जानकर बहुत सत्कार करती है।

कुसुमदत्त सेठ के पुण्यावती नाम की सुन्दर कन्या है। वह धन्यकुमार के रूपादि देखकर मोहित होती है और कुमार की चतुराई की परीक्षा के लिये सुन्दर फूल और डोरा देती है। कुमार उसकी सुन्दर चित्ताकर्षक फूलमाला गूंथ देता है। कुमारी पुण्यावती उस फूलमाला को अपनी सखी राजा श्रेणिक की पुत्री राजकुमारी गुणवती को अर्पण करती है। गुणवती माला देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती है और पूछती है कि -ऐसी सुन्दर गूंथी हुई पुष्पमाला किसने बनाई है? तब पुण्यावती कहती है कि हमारे घर एक सेठ पुत्र आया है, उस बुद्धिमान ने बनाई है। राजकन्या गुणवती सेठपुत्री से कहती है कि- अहो ! तू बहुत भाग्यशाली है जिससे तुझे ऐसे उत्तम वर की संगति मिलेगी।

एक समय धन्यकुमार बाजार में जाता है और एक सेठ की दुकान पर बैठता है। उसके बैठने से सेठ को व्यापार में बहुत लाभ होने से उसका कारण पुण्यशाली धन्यकुमार का जानकर वह कुमार से विनती करता है कि मेरी पुत्री सुन्दर, रूपवान और गुणवान है मैं उसका

विवाह आपके साथ करूँगा। इसी तरह दूसरे दिन शालीभद्र सेठ की दुकान पर जाकर कुमार बैठा तो उसे भी व्यापार में बहुत लाभ हुआ। वह इस लाभ का कारण पुण्यशाली कुमार है- ऐसा जानकर कुमार से कहता है कि हे भद्र ! मेरी बहन की सुभद्रा नामक कन्या है, मैं उसका विवाह आपके साथ करूँगा। इसी प्रकार अन्य भी कितने ही श्रीमंतो ने अपनी कन्याओं का विवाह धन्यकुमार के साथ करने का निश्चय किया।

राजा श्रेणिक की पुत्री गुणवती भी धन्यकुमार के रूप-गुण से मोहित होकर दिन-प्रतिदिन दुबली होने लगी। यह जानकर राजा श्रेणिक ने अपने पुत्रों से सलाह मांगी कि गुणवती का विवाह धन्यकुमार के साथ करना उचित लगता है ?

तब राजपुत्र कहते हैं - पिताजी ! उसकी शूरवीरता आदि की परीक्षा करना चाहिये और उसके लिये नगरी के बाहर राक्षसगृह है, उसे उसमें एक रात्रि रखना चाहिए, यदि वह राक्षकगृह के उपद्रवों पर विजय प्राप्त कर ले तो गुणवती का विवाह उसके साथ कर देना। इस प्रकार विचार करके धन्यकुमार से रात्रि में राक्षसगृह जाने को कहा। धन्यकुमार ने सहर्ष उसको स्वीकार कर लिया। अन्य अनेक श्रीमन्तों ने उसे जाने को मना किया कि जो उस राक्षस गृह में जाता है वह मृत्यु से बचता नहीं है, अतः आप वहाँ नहीं जावे; परन्तु कुमार तो निडर है, उसलिये उसने किसी की बात न मानकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक राक्षस गृह में जाना स्वीकार किया।

धन्यकुमार को राक्षसगृह में आते देख गृह का राक्षस बहुत प्रसन्न होता है और नमस्कार करके कहता है कि हे प्रभो! आप मुझे अपना सेवक समझें, मैंने इतने समय से आपके धन खजाने से परिपूर्ण इस भवन की रक्षा की है। अब आप आ गये हैं तो अपना धन खजाना संभालें और जब कभी भी ऐसी आवश्यकता पड़े तब इस सेवक को अवश्य याद करना, मैं हाजिर हो जाऊँगा -ऐसा कहकर अदृश्य हो गया। कुमार रात्रि में सुखपूर्वक वहाँ रहा और प्रातःकाल उठकर सामायिकादि क्रिया करके प्रसन्नता पूर्वक गाँव में आ गया। यह देख राजा श्रेणिक आदि को आश्चर्य के साथ यह निर्णय हो गया कि यह कोई साधारण मनुष्य नहीं है, महान गुणवान पुरुष है- ऐसा जानकर उन्होंने अपनी पुत्री गुणवती का विवाह कुमार के साथ कर दिया और साथ ही आधा राज्य भी दे दिया।

अब धन्यकुमार राजा हो गये हैं, यह सब पुण्योदय का फल है, जो धर्म सेवन से होता है -ऐसा जानकर कुमार अत्यन्त रुचिपूर्वक धर्म का पालन करता है और समय-समय पर

धर्म की महान प्रभावना करता है और सुखपूर्वक आनन्द से रहता है।

जब धन्यकुमार भाईयों की दुष्टता से गाँव छोड़कर चला आया था तभी से उनके नवनिधि विलुप्त हो गई तथा सभी हैरान-परेशान होकर उस घर को छोड़कर पुराने मकान में रहने गये तथा भाईयों की दुष्टता से गाँव के लोग उनकी निन्दा करने लगे और कुपुत्रों के पापोदय से धन समाप्त हो गया, पेट भरना भी मुश्किल हो गया -इस प्रकार वे सब महा दुःखी हो गये।

एक दिन सेठ धनपाल अपने धनवान भानजे सेठ शालीभद्र के यहाँ जाने को रवाना हुआ। राजगृही पहुँचकर धन्यकुमार के महल के नीचे बैठकर शालीभद्र का मकान कहाँ है? यह पूछने लगा। धन्यकुमार महल के ऊपर बैठा था, उसकी नीचे नजर पड़ते ही, अहो! ये तो मेरे पिताश्री ही है- ऐसा पहिचानते ही तुरन्त नीचे आकर पिताजी के चरणों में नम्रीभूत हो गया। बेचारे पिताजी तो उस समय फटे हुए कपड़े पहिने भिखारी के जैसे हो रहे थे। उन्हें राजा धन्यकुमार को नमस्कार करते देखकर राज्य कर्मचारी और नगरजन आश्चर्य करने लगे। पिता धनपाल तो धन्यकुमार को पहिचान ही नहीं पाये - इस कारण राजा को अपने पैरों में पड़ने से लज्जित हो जाते हैं और कहते है- अहो नराधीश ! आप तो महान पुण्यात्मा हो, आप तो पृथ्वी पालक हैं- अतः मुझे आपको नमसकार करना चाहीये? यह सुनकर धन्यकुमार कहता है कि- आप ही नमस्कार करने योग्य हैं; क्योंकि आप मेरे पूज्य पिताजी हैं और मैं आपका सबसे छोटा पुत्र हूँ- ऐसा सुनते ही पिता पुत्र को पहचान लेते हैं और उनके आँखों से आनन्द की अश्रुधारा बह निकलती है, यही दशा धन्यकुमार की हो जाती है।

धन्यकुमार पिताजी को अपने महल में ले गये और माता तथा भाइयों के कुशल समाचार पूछे। पिताजी ने उसके जाने के बाद घटित समस्त दुःखद वृतान्त कह सुनाया। तब धन्यकुमार ने सेवकों के साथ धन-धान्य, वस्त्रादि भेजकर उज्जैनी से माता व भाईयों को बुलाने भेजा। माता और भाई धन्यकुमार के समाचार जानकर बहुत आनन्दित हुए और राजगृही आगये। राजगृही आने पर धन्यकुमार माता और भाईयों का बड़ा सत्कार-स्वागत करते हैं और माता - पुत्र परस्पर मिलकर बहुत आनन्दित होते हैं। सबको रहने के लिये कुमार भवन देते हैं, भाई अपने अपराध की क्षमा मांगते हैं। पश्चात् धन्यकुमार धनादि की व्यवस्था कर देते हैं इस प्रकार धन्यकुमार, माता - पिता और सभी भाई सुख-शान्ति से रहते हैं और विशाल जिनमंदिरों का निर्माण कराकर धर्मध्यान में समय व्यतीत करते हैं।

एक दिन धन्यकुमार अपनी सुभद्रा नाम की पत्नी का मुख मलिन देखकर पूछते हैं कि -हे प्रिये ! आज तुम्हारा मुख मलिन क्यों दिख रहा है ? तुम्हें कुछ शोक है- ऐसा लगता है? तब सुभद्रा कहती है कि हे स्वामी ! मेरा भाई शालीभद्र बहुत दिनों से कुटुम्ब घर आदि से उदासीन होकर वैराग्य के चिन्तनपूर्वक घर में तप का अभ्यास करता है; परन्तु आज ज्ञात हुआ है कि वह जिनदीक्षा लेने के लिये तैयार हुआ है- इस कारण से मुझे शोक है। अन्यथा मैं आपके राज्य में सब प्रकार से अत्यन्त सुखी हूँ। यह सुनकर धन्यकुमार सुभद्रा से कहता है कि मैं अभी ही जाकर शालीभद्र को सुमधुर वचनों से समझा दूँगा- तू शोक छोड़।

धन्यकुमार उसी समय अपने साले के घर गया और कहा-अरे शालीभद्र! तुम आजकल घर क्यों नहीं आते ? तब शालीभद्र कहता है कि हे प्रियवर ! संयम बहुत कठिन है अतः उसकी सिद्धि के लिये घर में रहकर तपश्चरण का अभ्यास करता हूँ- इस कारण आपके यहाँ नहीं आ पा रहा हूँ। यह सुनकर धन्यकुमार कहता है कि अरे भाई ! तुम्हें जिनदीक्षा लेनी हो तो जल्दी करो, जो ऋषभदेव आदि महापुरुष मोक्ष गये हैं, क्या उन्होंने घर में तपश्चरण का अभ्यास किया था ? वे तो उल्कापात आदि किंचित् मात्र वैराग्य का कारण पाकर करोड़ों वर्षों से भोगे हुए भोगों को क्षण मात्र में छोड़कर तप द्वारा मुक्त हो गये। वस्तुतः उन्हें ही पुरुषोत्तम कहा जाता है। तुम तो डरपोक दिखते हो इस कारण घर में रहकर तप का अभ्यास कर रहे हो। देखो ! मैं अभी ही कठिन दीक्षा और तप को उसके अभ्यास किये बिना ही ग्रहण करता हूँ। क्या तुम नहीं जानते की पापी काल कब आकर भक्षण कर लेगा। इसका कुछ भी विश्वास करने योग्य नहीं है। इस कारण जो जीव संसार से छूटना चाहता है, उसको जब तक वृद्धदशा नहीं आवे, इन्द्रियां शिथिल न होवें, उसके पूर्व ही मोक्ष के लिये प्रयत्न करना चाहिये-इत्यादि हितकर और वैराग्यपूर्ण वचनों से शालीभद्र के रोम-रोम में वैराग्यरस जागृत करके उन्हें तत्काल ही मुनिपद के लिये तैयार कर दिया और स्वयं भी उनसे अधिक विरक्तिपूर्वक अपने घर गये, राज्य का भार अपने पुत्र को सौंपा और माता-पिता, श्रेणिक आदि से आज्ञा लेकर शालीभद्र आदि अनेक लोगों के साथ भगवान महावीर के समवसरण में गये।

समवसरण में जाकर भगवान के दर्शन-पूजन किये, अनेक प्रकार के गुणगान करके भगवान की भक्ति की; तत्पश्चात् प्रभु से विनती की, कि हे नाथ ! हमें मोक्ष प्रदायक भगवती जिनदीक्षा प्रदान करो - ऐसा कहकर हाथ जोड़कर खड़े रहते है और भगवान की आज्ञानुसारं धन्यकुमार, शालीभद्र आदि के साथ बाह्य अभ्यंतर परिग्रह का त्यागकर मोक्ष की मातारूपी

दिगम्बर दीक्षा अंगीकार कर अनेक प्रकार की कठिन तपश्चर्या करते हैं।

इस प्रकार मुनिराज धन्यकुमार तपश्चरण कर अन्त में सल्लेखना का पालन करते हैं। अन्त में प्रायोपगमन मरण से ध्यान और समाधिपूर्वक बाह्य दश प्राणों का त्याग कर धर्म के प्रभाव सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग में अहमिन्द्र हुए। तथा वहाँ से चयकर मनुष्य पर्याय प्राप्तकर मोक्ष जायेंगे।

शालीभद्र आदि मुनिराज भी अपनी-अपनी योग्यतानुसार तपश्चरण करके समाधिमरण पूर्वक देह त्यागकर यथायोग्य स्वर्गों में गये।

अहो ! देखो, पवित्र जैन धर्म की महानता ! जो जीव इसको अपने अन्दर उतारता है, उसका कल्याण नियम से होता ही है। देखो, धन्यकुमार के जीव ने पापी चोर होकर जिन मंदिर का निर्माल्य द्रव्य चोरी किया, सातवें नरक में गया, वहाँ के घोर दुःख भोगे। उसके बाद अकृतपुण्य हुआ और मात्र मुनिराज को आहर देने की भावना मात्र से महान पुण्यार्जन कर स्वर्ग गया, तत्पश्चात् महाभाग्यशाली के रूप में धन्यकुमार हुआ, और मुनि होकर तपश्चरणपूर्वक समाधिपूर्वक प्रायोपगमन मरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ। तथा अगले भव में मोक्ष जायेगा।

ऐसे पापी जीवों को भी पवित्र बनाकर मोक्षमार्ग में लगाने वाला यह महान जैन धर्म हमें भी अपनाकर अपने आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहिये।

हे विद्वतजनों! धन, महल और शरीर आदि के विषय में ममत्व बुद्धि छोड़कर शीघ्रता से कोई भी अपना ऐसा कार्य करो कि जिससे यह जन्म फिर से प्राप्त न करना पड़े। अन्य सैंकड़ों वचनों के बाह्य डोल से तुम्हारा कुछ भी इष्ट भी सिद्ध होने वाला नहीं है। यह जो तुमको उत्तम मनुष्य पर्याय आदि स्वहित साधन सामग्री प्राप्त हुई है वह फिर से प्राप्त होगी अथवा नहीं होगी, यह कुछ निश्चित नहीं है। अर्थात् उसका फिर से प्राप्त होना कठिन ही है।

- श्री पद्मनन्दि पंचविंशति